REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2022

हरिशंकर परसाई के राजनीतिक व्यंग्यों में यथार्थ दृष्टि का अध्ययन

नीता वर्मा[1] , डॉ. रामलला शर्मा[2]
[1]शोधार्थी, हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]प्राध्यापक हिन्दी, संजय गांधी स्मृति शासकीय स्नातकोत्तर , महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.)

सारांश –

हरिशंकर परसाई के लेखन में राजनीतिक चेतना प्रारम्भ से ही देखने को मिलती है। परसाई जी ने संसदीय राजनीति के कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दों को व्यंग्य का विषय बनाया है। 'सोने के साये' में परसाई जी ने पूँजीवादी प्रतिष्ठानों के हिमायती समाजवादी ढाँचे की राजनीति को सीधी सरल भाषा में व्यक्त करते हुए लिखते हैं– ''गड़े सोने की बड़ी उलझन है एक तो उसका रखवाला साँप होता है, फिर वह ट्रस्टी दयालुता, भलाई और धार्मिकता का रूपक धारण किये रहता है। यह मारा नहीं जाता और अगर उसे सीधे अक्षरों में फुसलाओं तो वह भाग जाता है और सोना साथ ले जाता है।

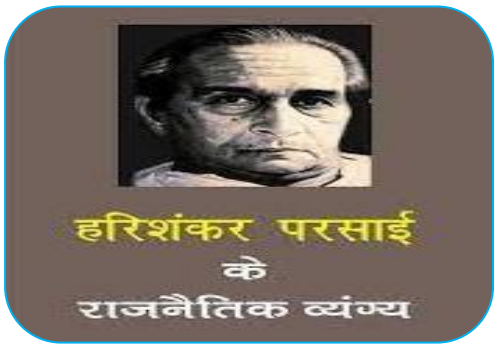

मुख्य शब्द – लेखन, राजनीति, एवं चेतना ।

प्रस्तावना –

हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य के द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था के हिमायतियों पर यह करारा चाँटा मारा है। राष्ट्रीय एकता का दिखावा करने वाले व्यक्तियों की मनोदशा पर चित्रण परसाई जी अपने लेख में तीखे व्यंग्य के द्वारा करते हैं। ''पंजाब का गेहूँ गुजरात के कालाबाजार में बिकता है और मध्यप्रदेश का चावल मुनाफाखोर के गोदाम में भरा है। दश एक है। किस तरह कानपुर का ठग भदुराई में ठगी करता है, हिन्दी भाषी जेबकतरे, तमिल भाषी की जेब काटता है सब सीमायें टूटी हैं। अज्ञेय से क्षमा माँगते हुए कह सकते हैं– भ्रष्टाचार ही इस देश में सबको बाँधता है, एक करता है।''[1]

जनता की शक्ति का सहारा हरिशंकर परसाई बड़े से बड़े राजनीतिज्ञों को उपहास का विषय बना लेते हैं, जिस तरह आज के तथाकथित राजनीतिक चालाकीपूर्ण बारीक औजार गढ़ लिये हैं और इन औजारों को तोड़ने और उनकी तहदर को समझने के लिए परसाई के पास भी बहुत ही बारीक पहचान सकने वाली दृष्टि है। यही दृष्टि देश की जनता के बीच अलख जगाती हुई राजनीति के अंधकार को दूर करने का प्रयास करती है, जिस देश को चलाने वाली पार्टी में सैद्धान्तिक एकता न हो और जहाँ महत्वपूर्ण पदों पर रहकर स्वार्थ की लड़ाई लड़ी जाती हो, असन्तुष्ट और सन्तुष्ट का झगड़ा जहाँ जनहित को एक ओर रखकर कुर्सी का खेल खेलता हो, दल के भीतर नये महाभारत की तैयारी होती हो, भूतपूर्व और अभूतपूर्व बनने में जहाँ समय न लगता हो। हरिजनों की हत्या जहाँ पलक झपकते एक आंकड़ा बन जाती है ऐसे देश की जनता की ओर से परसाई जी उद्घोषणा करते हैं– ''राजनीतिज्ञों के लिए हम नारे और वोट हैं। बाकी के लिए हम गरीबी, भूख, बीमारी

और बेकारी हैं। मुख्यमंत्रियों के लिए हम सिर दर्द हैं और उनकी पुलिस के लिए हम गोली दागने के निशाने हैं।''[2]

हरिशंकर परसाई ऐसे जागरूक लेखक हैं जिन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राजनीति के चरित्र को लगातार उजागर किया है और जनता को बतलाया है कि आर.एस.एस. की तथाकथित सांस्कृतिक मान्यतायें– घृणा, साम्प्रदायिकता, संकीर्णता, हिंसा, हत्या और द्वेष। बंदर की तरह मदारी के इशारे पर नाचते हुए भी वह व्यक्तिगत आजादी का नारा लगाता हुआ खुशकहमी में घूम रहा है। अपनी कहानियों में परसाई जी उद्घाटित करते हैं– 'आगे चलकर जनता पार्टी पूरी तरह जनसंघ हो जायेगी। तब 30 जनवरी को यह महत्व होगा– इस दिन परमवीर राष्ट्रभक्त गोडसे ने गाँधी को मारा। इस पुण्य प्रताप से इसी दिन पार्टी का जन्म हुआ, जिसने हिन्दू राष्ट्र की स्थापना की।''[3]

हरिशंकर परसाई यह जानते हैं कि देश में चाहे जिस पार्टी का शासन हो उनकी लड़ाई सदैव जारी रहेगी उन तथाकथित पार्टी के बीच जो समाज के लोगों का शोषण करेगी। परसाई जी का अभिप्राय तो जनता को यह बताना है कि – ''इस व्यवस्था की चादर फटकर तार–तार हो गयी है। इसमें बही पेबंद लगता है। चादर ही बदलनी पड़ेगी जनाब।''[4]

हरिशंकर परसाई कहते हैं ''सहद इस देश में लेनिन प्रकट हो जाये और क्रांति की प्रक्रिया शुरू कर दे, लेनिन आवाज दे गिर चलो क्रांति की निर्णायक लड़ाई के लिए। बढ़ों ओ वीरों! तो लोग कहेंगे – आप ही करो क्रांति हम अभी – जय संतोषी माता देख रहे हैं। हमे अमान को पूरा तो देख लेने दो। रंग में भंग मत करो।''[5] आज की भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य करते हुए परसाई जी यह स्पष्ट करते हैं कि सामान्य जीवन में राजनीति इस तरह रच बस गयी है कि साधारण इंसान भी राजनीतिक हलचलों से तटस्थ होकर जीता नहीं है। कला, धर्म एवं विज्ञान भी राजनीति के चंगुल में फस कर पंगु हो गया है, धर्म कला विज्ञान आज भी राजनीति की बंदी हो गई हैं। परसाई जी लिखते हैं– ''राजनीति ने अपनी योजना चालू रखी, उसने समाज की स्वतंत्र चिंता को समाप्त किया। उसने निष्क्रियता, भोग, लालसा–भरी निराशा में आनंद लेना सिखाया। देशभक्ति के नाम पर प्रतिहिंसा और घृणा से दिखाई हत्या को वीरता बताया।''[6]

विश्लेषण –

हरिशंकर परसाई ने नफरत की राजनीति, जाँच कमीशन, सरकार का कुत्ता, राजनीतिक गांजा, राजनैतिक स्लोपॉजनिंग, महान नेता, महान चिंता, जनता, राजनैतिक मुख्य धारा क्या आदि लेखों में नेताओं के दलबदलूपन, रोजाना विपक्ष की सरकार को नीचा दिखाने का अवसर हाथ से न जाने देना, राजनैतिक जीवन में नैतिकता के आभावों को बड़ी ही सरलता के साथ अपने व्यंग्यात्मक लेखों के माध्यम से व्यक्त किया है। आपने राजनीति के अखाड़े का पर्दाफास करते हुए उद्दाम साहस में प्रहार कर नेताओं के उथले चरित्र को उजागर किया है। देश की राजनीति में फैली विद्रूयताओं पर करारा व्यंग्य परसाई जी ने अपनी रचना ''ठिठुरता हुआ गणतंत्र'' में किया है।

अपने निजी काम के लिये सरकारी चपरासी का प्रयोग, दफ्तर की गाड़ी से अपने बच्चों को स्कूल भेजना, घूस को चंदा बनाते अधिकारी प्रशासन की अर्कमणता के पास खोलती है। सरकारी अफसर भ्रष्टाचार के कीचड़ में इतना धंस गया है कि उसे अपनी वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलता है वह सोचता है कि वह समाज के श्रेष्ठ पद पर कार्य कर रहा है। हरिशंकर परसाई ने निठल्ले की डायरी में उक्त विषयों की बड़ी ही बारीकी से उठाया है– ''26 तारीख की रात 11 बजे पंडित नेहरू ने कहा मैंने सब फाइलें निपटा दी। मेरा सब काम पूरा हो गया। दूसरे दिन पंडित जी की मृत्यु हो गयी। इससे देशवासियों को क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए? यह कि अपना काम पूरा करना खतरनाक है, जिसकी सब फाइलें पूरी हो जाये, उसकी मृत्यु हो जाती है, जिसे जीवित रहना है और देश की सेवा करनी है वह फाइलें कभी पूरी नहीं करेगा।''[7]

हरिशंकर परसाई ने 'चमचे' की दिल्ली यात्रा में प्रशासनिक क्षेत्र में किस तरह जाति पांत की भावना फेल कर भ्रष्टाचार फैला रही है। उसका उल्लेख परसाई जी ने इसमें किया है। "इस बार पी.सी. में बड़ा तूफान उठेगा। रामसिंह की 'इन्क्वारी' का मामला है न। पर सुना है, ठाकुरों में फूट पड़ गयी है। आधे अपना साथ देंगे। क्लेक्टर आजकल गुप्ता गुट की बड़ी चिरौरी करता है। इसका तबादला होना चाहिए। वे लोग लेच्छी को लेकर आपको बदनाम करने की कोशिश कर रहे हैं।''[8]

हरिशंकर परसाई ने 'सदाचार का ताबीज' में आर्थिक समस्याओं पर कटाक्ष करते हुए आपने लिखा है कि – ''वास्तविक आर्थिक सुरक्षा के अभाव में भ्रष्टाचार निरोधक प्रयासों की असफलता की ओर संकेत करती है। महीने के शुरू के दिनों में जो व्यक्ति भ्रष्टाचार निर्णय के लिए एक मजबूत स्टैट ले आती है।''[9]

हरिशंकर परसाई ने निबंध और कहानियां, रेखाचित्र और उपन्यास के अलावा अखबार के कालम के जरिये प्रशासनिक क्षेत्र में फैली विसंगतियों एवं भ्रष्टाचार को अपने यथार्थ का विषय बनाकर विवेचित किया है। हरिशंकर परसाई जी ने राजनीतिक विचारों को अपने साहित्य में स्थान दिया। वर्तमान राजनीतिक स्थिति को उन्होंने क्रमबद्ध तरीके से स्पष्ट किया है। उनके साहित्य को पढ़ कर ऐसा लगता है कि उन्हें राजनीति का बहुत बारीक ज्ञान था। साठोत्तर काल में जैसे–जैसे शहर और इसके उत्पादों का विकास गाँव की ओर होना शुरू हुआ, तब से गाँव भी शहर के आकर्षण से नहीं बच पाए। उसकी सुंदरता व पारम्परिक मूल्य की कृत्रिमता लिए हुए लगते हैं। राजनीति ने इस कदर कहर मचाया है कि विश्व का कोना–कोना दहल उठा है। छटपटाती मानवीय सभ्यता को कोई ऐसा ठाँव दृष्टिगोचर नहीं होता, जहाँ पहुंचकर उसे एक सहारा प्राप्त हो सके।

इस काल के व्यंग्यपरक उपन्यासकारों ने जनतंत्र–प्रणाली, चुनाव, वोट की ख़रीद–फ़रोख़्त, झूठे आश्वासन, विधायकों की कार्यप्रणाली, दल–बदल, नारेबाज़ी, साम्प्रदायिकता आदि सभी पहलुओं को व्यंग्य का कथ्य बनाया है। लगभग सभी उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में राजनेताओं पर किसी न किसी रूप में व्यंग्य अवश्य किया है, ताकि उनकी स्थाई रूप से बंद श्रवण कलिकाओं को खोला जा सके। प्रसिद्ध व्यंग्यधर्मी श्री हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य 'वह जो आदमी है न' में सत्य का बखूबी अनावरण किया है कि बड़ी उम्मीद और कामना से देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। आशा की गई कि राम–राज्य की स्थापना होगी। देश में कोई भूखा, नंगा, बेघर नहीं होगा। जनता ही देश की शासक होगी परन्तु वे ''इण्डिया इज़ ए ब्यूटीफुल कन्ट्री'' और छूरी–काँटे से इण्डिया को खाने लगे। जब आधा खा चुके, तब देशी खाने वालों ने कहा ''अगर इंडिया इतना खूबसूरत है, तो बाक़ी हमें खा लेने दो। तुमने 'इण्डिया' खा लिया। बाकी बचा 'भारत' हमें खाने दो।''[10]

''क्या कहानीकार, निबंधकार, कवि उपन्यासकार और क्या सामान्य पाठक, सभी राजनीति के दंश से अछूते न रह सके। व्यंग्य–रचना के लिए यह अनुकूल क्षण, था, जब ढ़ेर सारी विसंगतियाँ एक तश्तरी में सजाकर प्रस्तुत की गयी हों। राजनेताओं के क्रिया–व्यापार हिन्दी–व्यंग्य यात्रा का आधार बने। नेता का नाम ही 'व्यंग्य का पर्याय बन गया। राजनेताओं के छल का शिकार होते समय, जनता यह मान बैठी थी कि अब उसे राजा–महाराजाओं और सामन्तों से मुक्ति मिल गयी है। शोषणकर्ता गोरी चमड़ी की विदाई भी उसे उत्साहित कर गई थी। जाने कितने सपने बुनने का अवसर उसे मिला था। वास्तव में क्या यह परिवर्तन था या सत्ता का रुपान्तरण? वही नवाब, सामंत, साहूकार और शोषक वेश परिवर्तन कर नये–नये रूपों में जनता के सामने आये।''[11]

भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की शरण में बड़े–बड़े गुण्डे–बदमाश आते हैं। काली करतूतों को बढ़ावा यही राजनेता देते हैं और घटना को अंजाम देने पर जनता के मध्य आकर घड़ियाली आँसू भी यही बहाते हैं, क्योंकि इन्हें चुनाव भी तो लड़ना है। सीट बचानी है और घटना को आगे भी अंजाम देना है। आज के राजनेता घृणित–से–घृणित कार्य करवाने में अपनी महानता समझते हैं। 'वाद' की लहलहाती फ़सल में मचान डालकर खर्राटे भरना इनकी नियति बन गयी है। व्यंग्यकार इनके बंद नेत्रों व कानों की शक्ति के प्रति जनता को जागृति करना चाहता है। राजनीतिक मूल्यों की गिरावट केवल सत्तारूढ़ दल में ही नहीं बल्कि कुर्सी की ताक़ में लगे हुए सभी दलों में आयी है। धार्मिक उन्माद की भावना भड़काकर मानव के बीच गहरी ख़ाई खोदना भी इनका परमकर्त्तव्य सा बन गया है। नीति की अवहेलना कर काली करतूतें करने में भी अब इन राजनीतिक मठाधीशों को शर्म नहीं आती। समूची राजनीति अनीति या उखाड़–पछाड़ पर केन्द्रित हो चली है। ''सरकार या प्रजांतत्र उनके लिए है, जो समर्थ हैं। ग़रीब के लिए भगवान तक पहुंचना आसान है, लेकिन न्यायालय या सरकार तक उसकी पहुंच नहीं हो सकती।''[12]

श्री हरिशंकर परसाई ने अपनी रचना 'ज़हरीली शराब' में आश्रम की 'बह्मचर्य–व्यवस्था' पर व्यंग्य करते हुए लिखा है, ''स्वतंत्रता के पहले सन् 1937–38 की बात है। गाँधीजी के आग्रह थे, जिनका पालन वे चेलों से करवाते थे। एक था – विवाह कराकर पति–पत्नी से ब्रह्मचर्य का व्रत लेना। यह सधता नहीं था। सब तो महात्मा नहीं थे। पर स्त्री और पर पुरुष से सम्बंध होने से ब्रह्मचय खण्ड़ित नहीं होता था। इसी तरह उन्होंने गाँधीजी की शराब–बंदी की नीति को आलोचना का विषय बनाया। गाँधीजी ने आश्रमवासियों को नीरा पीने की

सलाह दी। कुछ सच्चे गाँधीवादियों की पवित्र आत्मा को बोध हुआ कि नीरा को ताड़ी बनाकर पीने में ज़्यादा मज़ा है, वे ताड़ी बनाकर पीने लगे।''[13]

गाँधीजी पर व्यंग्य करते हुए हरिशंकर परसाई लिखते हैं, ''जब 30 जनवरी को गोडसे की जय–पराजय होगी, तब यह तो बताना ही पड़ेगा कि उसने कौन सा महान कार्य किया था। बताया जाएगा कि इस दिन उस वीर ने गाँधी को मार डाला था, तो आप गोडसे के बहाने याद किए जायेंगे। अभी तक तो गोडसे को आपके बहाने याद किया जाता था।''[14] गाँधीजी पर आज नेता वर्ग और सरकार, गाँधी के नाम का सहारा लेकर वोट मांगते हैं। लोगों को गाँधी के पुराने आदर्शों का प्रलोभन देते हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, मानवता की आड़ में वे लोग अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे हुए हैं। ''आज भी गाँधीजी की जय–पुकार कर कांग्रेस के लिए वोट मांगे जाते हैं परन्तु गाँधीजी के सिद्धांत और नीति शासन में या कांग्रेस के व्यवहार में कहाँ है? गाँधीजी को तो केवल राजघाट में समेट दिया गया है।''[15]

हरिशंकर परसाई ने अनेक रचनाओं में जैसे, 'असिस्टेन्ट', 'लोकनायक', 'हस्ती मिटती नहीं हमारी', 'छिनाल नेता या जनता', 'महात्मा गाँधी को चिट्ठी पहुंचे', 'एक अच्छी घोषणा', 'शब्द पीछा कर रहे हैं', 'अनशन के बाद रैली', 'राखी बंधन राजनीति', 'देवदासजी से भेंट' और 'देशहित जिज्ञासा' आदि अनेक रचनाओं में जनसंघ, भाजपा, उनके नेताओं, नेताओं के क्रिया–कलाप, आर.एस.एस. और भाजपा के अन्तर्सम्बन्धों, धर्म की राजनीति, देश–निष्ठा आदि को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है।

हरिशंकर परसाई ने अपनी व्यंग्य रचना 'अब धोती पहन लो' में आज़ादी के तथाकथित परिवर्तन पर कटाक्ष किया है – ''सम्पूर्ण क्रांति हो गई। दूसरी आज़ादी आ गई। क्रांतिवीर सत्ता में आ गए, पर परम्पराएं वही हैं। भाषा तक उसी भ्रष्ट कांग्रेसी–शासन की हैं, जो तीस साल से चली आ रही है।''[16]

हरिशंकर परसाई ने 'लघुशंका न करने की प्रतिज्ञा' में ऐसा ही मत रखा है, जिसमें चीता, बकरी और खरगोश के प्रतीकों द्वारा व्यंग्यकार अफ़सरों के दौरे और उसके लिए छोटे कर्मचारियों द्वारा पेट काटकर दिए गए अंशदान की प्रक्रिया पर करारा प्रहार किया है, ''सब सोचते हैं कि साहब कुआँरा या रडुंआ होता तो कितना अच्छा होता। तब मेमसाहब के गिफ़्ट के लिए पैसे न देने पड़ते।''[17]

राजनीति में नेता तथा मंत्रीगण ज़रा–ज़रा सी बात के लिए आश्वासन तथा झूठ बोलते हैं। प्रधानमंत्री भी इसी प्रणाली में सबसे प्रमुख रहते हैं। जनता सुने या न सुने फिर भी वे भाषण देते रहते हैं। राजनीतिज्ञों के भाषण में सिवाय देखना, देख रहे हैं, दिखाई देता है, दिखता है, देखो, के अलावा और कुछ नहीं होता है। चुनाव तो इनके लिए ऐसा खेल है, जिसमें अनेक कसौटियों से वोट प्राप्त कर लेते हैं। धर्म–निरपेक्ष देश के संविधान में ही धर्म, भेद, जाति–पाँति पर चुनाव जीत लिए जाते हैं। विधायक और सांसद बनने के पश्चात् 'मंत्री कुर्सी प्रतियोगिता' में दल के प्रति स्नेह, वफ़ादारी, श्रद्धा, ईमानदारी और जनता के साथ किए गए वायदों को मिट्टी में मिलाते रहते हैं। मात्र उद्घाटन करना ही मंत्रियों का उद्देश्य रह गया है। हरिशंकर परसाई इस पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, ''मैं आपका आभारी हूँ कि इस अकाल उत्सव के उद्घाटन के लिए आपने मुझे आमंत्रित किया। अकाल भारत की पुरानी समस्या है। आप जानते हैं कि भगवान राम के राज्य में भी अकाल पड़ा था। हमारे राज्य में भी अकाल पड़ता है। हम गाँधीजी के आदेश के अनुसार राम–राज्य ला रहे हैं। अकाल राम–राज का आधार है। मेरे विपक्षी मित्र, जो भारतीय संस्कृति के पूजक हैं, मुझसे सहमत होंगे कि अकाल हमारी महान भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है।''[18]

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः राजनीति में उम्र की कोई सीमा नहीं रहती है। कहा जाता है कि 60 वर्ष की आयु पार करने के बाद ही राजनीति में युवावस्था आती है। ऐसे नेता नई पीढ़ी को आगे आने का अवसर प्रदान नहीं करते हैं।

संदर्भ –

[1] डॉ. आभा भट्ट – हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में वर्ग चेतना, पृष्ठ 79

[2] हरिशंकर परसाई – माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 61

[3] हरिशंकर परसाई – माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 25

[4] हरिशंकर परसाई – माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 25
[5] हरिशंकर परसाई – माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 91
[6] हरिशंकर परसाई – तब की बात और थी, पृष्ठ 83
[7] निठल्ले के दर्शन, परसाई रचनावली, खण्ड–4, पृष्ठ 222
[8] रामसिंह की ट्रेनिंग, परसाई रचनावली, खण्ड–2, पृष्ठ 68
[9] सदाचार का ताबीज, परसाई रचनावली, खण्ड–2, पृष्ठ 60
[10] हरिशंकर परसाई – ठिठुरता हुआ गणतन्त्र, पृष्ठ 12
[11] डॉ. हरिशंकर दुबे – स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी–गद्य में व्यंग्य, पृष्ठ 119
[12] हरिशंकर परसाई – माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 61
[13] हरिशंकर परसाई – ठिठुरता हुआ गणतन्त्र, पृष्ठ 01
[14] हरिशंकर परसाई – ठिठुरता हुआ गणतन्त्र, पृष्ठ 01
[15] श्री शंकर पुणताम्बेकर – एक मंत्री स्वर्गलोक में, पृष्ठ 97
[16] सम्पादक कमला प्रसाद – परसाई रचनावली : माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 26
[17] सम्पादक कमला प्रसाद – परसाई रचनावली : माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 60
[18] सम्पादक कमला प्रसाद – परसाई रचनावली : माटी कहे कुम्हार से, पृष्ठ 143